तो क्षणिक होता है, दूसरों के द्वारा भरा हुआ जोश कुछ समय में समाप्त होजाता है पर जो स्फुरणा अन्तःकरण से निकलती है वह ज्वाला मुखी पर्वत की अग्निशिखा की भांति प्रज्वलित ही रहती है। यह अग्निशिखा प्रज्वलित होजाने पर साधक का अन्तःकरण सुदृढ़ आधार पर खड़ा होजाता है और आध्यात्मिक यात्रा आगे बढ़ने लगती है। यह आन्तरिक निर्माण तब होता है जब आत्मा में ब्राह्मी भावनाएं हिलोरें लेती हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें भगवती गायत्री माता की शरण में जाना पड़ता है। इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि विश्वमाता गायत्री में यज्ञोपवीत का गुह्य रहस्य छिपा हुआ है, बिना गायत्री के यज्ञोपवीत अधूरा है, केवल चिन्ह पूजा मात्र है। इस लिए जो गायत्री सहित यज्ञोपवीत को धारण करता है वही सच्चे द्विजत्व का प्राप्त करता है। यों चिन्ह पूजा तो सभी करते हैं, लकीर तो सभी पीटते हैं पर द्विज वही है जो आत्म दृष्टि प्राप्त करके उद्देश्य मय जीवन जीता है। अन्यथा जन्म से तो सभी शूद्र हैं, जिसमें द्विजत्व नहीं वह शूद्र ही है भले भी अपने को वह सवर्ण कहता रहे। इसलिए द्विजत्व को प्राप्त करने के लिए गायत्री की शरणागति आवश्यक है।

———

ब्रह्म सन्ध्या।

गायत्र्या या युता सन्ध्या ब्रह्म सन्ध्या तु सामता।
कीर्तितं सर्वतः श्रेष्ठं तदनुष्ठान मागमैः॥

(या सन्ध्या) जो सन्ध्या (गायत्र्या) गायत्री से (युता) युक्त होती है (सा तु) वह (ब्रह्म सन्ध्या) ब्रह्म सन्ध्या (मता) कहलाती है। (आगमैः) शास्त्रों ने (तदनुष्ठानं) उसका अनुष्ठान (सर्वतः श्रेष्ठ) सबसे श्रेष्ठ (कीर्तितं) कहा है।

आचमनं शिखाबन्धः प्राणायामोऽघमर्षणम्।
न्यासश्चोपासनायांतु पंच कोष मता बुधैः॥

(आचमनं) आचमन (शिखाबन्धः) शिखा बांधना (प्राणायामः) प्राणायाम (अघमर्षणं) अघमर्षण (च) और (न्यासः) न्यास ये (पंच कोषाः) पांच कोष (बुधैः) विद्वानों ने (उपासनायां) उपासना (मताः) स्वीकार किये हैं।

सन्ध्या बन्दन की अनेकों विधियां हैं। हिन्दू धर्म के अन्तर्गत अनेकों सम्प्रदाय हैं और उन सम्प्रदायों की अपनी अपनी अलग उपासना विधि हैं। हनुमान चालीसा पाठ से लेकर प्रतिमा पूजन तक और हठ योग से लेकर समाधि स्थापना तक असंख्यों पूजा विधान हैं। इन विधानों की प्रमाणिकता सिद्ध करने वाले प्राचीन अभिवचन पुस्तकों में उपलब्ध हो ही जाते हैं। इस प्रकार नित्यकर्म की संध्याके अनेकों रूप दृष्टि गोचर होते रहते हैं।

जैसे नदियों में गंगा का अपना एक अनोखा स्थान है, पुष्पों में कमल, पक्षियों में हंस, पशुओं में गौ, वनस्पतियों में तुलसी का एक विशेष महत्व है, उसी प्रकार संध्याओं में ब्रह्म संध्या की महिमा निराली है। यों तो सभी नदियां, सभी पुष्प, सभी पशु, सभी पक्षी, सभी वनस्पति अपने अपने महत्व रखती हैं, परन्तु गंगा, कमल, हंस, गौ, तुलसी आदि में कुछ आध्यात्मिक तत्व इतनी अधिक मात्रा में है कि सतोगुण के आकांक्षियों के लिए इन उपरोक्त वस्तुओं की तुलना में और कोई नहीं जँचती। सन्ध्या बन्दन में भी ब्रह्म संध्या की श्रेष्ठता इसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ मानी गई है।

गायत्री मंत्र द्वारा जो संध्या की जाती है उसे ब्रह्म संध्या कहते हैं। शास्त्रों ने उसके अनुष्ठान को सर्वश्रेष्ठ कहा है। कारण कई हैं। एक तो यह कि केवल एक ही मंत्र कंठाग्र होने से

सारे संध्या वन्दन का विधान पूरा होजाता है। सब लोग सुशिक्षित और संस्कृत प्रेमी नहीं होते। सब के लिए मंत्रों को शुद्ध रूप से पढ़ना और कंठाग्र करना कठिन होता है। फिर बहुत से मंत्रों को कंठाग्र करने के प्रयत्न में सफल न होने के कारण अनेकों इच्छुक व्यक्ति निरुत्साहित हो जाते हैं। याद भी करलें तो वे मंत्र उन्हें तोता रटंत की तरह कंठाग्र तो रहते हैं पर उनका शब्दार्थ और भावार्थ याद नहीं होता। यदि याद भी होजाय तो संध्या वन्दन के समय उन भावों से हृदय और मस्तक को ओत प्रोत करना कष्ट साध्य प्रतीत होता है। जब तक एक मंत्र पर भावनाएं भली प्रकार केन्द्रित नहीं होपातीं तब तक दूसरे मंत्र का विनियोग आजाता है, इस प्रकार थोड़े थोड़े समय में मंत्रों की भावनाएं बदलने से चित्त पर किसी एक भाव का संस्कार नहीं जम पाता।

गायत्री की ब्रह्म संध्या इन सब दोषों से मुक्त है। एक छोटे से मंत्र को कंठाग्र कर लेना कुछ कठिन नहीं है, फिर उसका शब्दार्थ, भावार्थ हृदयंगम कर लेना भी अधिक कष्ट साध्य नहीं है। देर तक, आदि से अन्त तक एक ही भावना पर चित्त को स्थिर रखने से मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार वह भाव अन्तर्मन के बहुत गहरे अन्तःस्तल में उतर कर सुदृढ़ होता है और तदनुसार जीवन क्रियाएं उद्भूत होती हैं। इसे ही सिद्धि कहते हैं। ब्रह्मसंध्या के साधक को सिद्धि शीघ्र होती है।

किसी मूल्यवान और महत्वपूर्ण वस्तु को बहुत सुरक्षित रखा जाता है। खुली जगह से बचाने के लिए एक मकान की चहार दिवारी खड़ी की जाती है, उसके भीतर एक छोटी कोठरी बनाते हैं, उसके भीतर एक बड़ी अलमारी होती है उसके अन्दर एक छोटी संदूकची में जेवर जवाहरात रखे जाते हैं। आत्मा पंच कोषों के भीतर बैठा है। अन्न मय, प्राण मय, मनोमय, विज्ञान मय, आनन्द मय कोषों के भीतर आत्मा का निवास है। मन्दिरों में भी देव मूर्तियों कई आवरणों के अन्दर रहती हैं। यह आवरण इस लिए खड़े किये जाते हैं कि अधिकारी व्यक्ति ही वहां तक पहुंच सकें। मंत्र विज्ञान की गोपनीयता और साधना क्लिष्टता का भी रहस्य यही है कि जिनकी लगन सच्ची है, निष्ठा पक्की है वे ही उस लाभ को प्राप्त करें। शरीर को जैसे हम कई कपड़ों से ढके रहते हैं उसी प्रकार ब्रह्म संध्या भी पंच कोषों के आवरण से आवृत है। इन आवरणों को (१) आचमन (२) शिखा वन्धन (३) प्राणायाम (४) अघमर्षण (५) न्यास, कहते हैं। इनका विवेचन नीचे किया जाता है।

सन्ध्या करने के लिए प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में नित्य कर्म से निवृत्त होकर, शरीर को शुद्ध करके, स्वच्छ वस्त्र धारण करके ऐसे स्थान में बैठना चाहिए जो एकान्त और खुली वायु का हो। चींटी आदि को हटाने के लिए भूमि को झाड़ बुहार लेना चाहिए। उस पर जल छिड़क कर शुद्धि कर लेनी चाहिए। कुश का आसन खजूर की चटाई या कोई और घास पात का बना हुआ आसन लेना चाहिए। न मिलने पर सूत का आसन बिछाया जासकता है। ऊन, मृगचर्म आदि के आसनों का उपयोग न करना चाहिए क्योंकि इनमें तामसिक प्राण होता है। आसन बिछाकर पूर्व की ओर मुख करके, पालथी मार कर मेरु दंड सीधा रख कर बैठना चाहिए। पास में तांबे के लोटे में जल भर कर रख लेना चाहिए। तांबे का पात्र न मिलने पर चांदी कांसा, पीतल, मिट्टी का पात्र काम में लिया जासकता है। चित्त को शान्त और सतोगुणी बनाकर संध्या पर बैठना चाहिए।

(१) आचमन—जल भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसका तीन बार आचमन करना चाहिए। बायें हाथ से पात्र को उठाकर हथेली में थोड़ा गड्ढा सा करके उसमें जल भरे और गायत्री मंत्र पढ़े, मंत्र पूरा होने पर उस जल को पीलें। दूसरी बार

फिर उसी प्रकार हथेली में जल भरे और मंत्र पढ़ कर उसे पीले। तीसरी बार भी इसी प्रकार करें। तीन बार आचमन करने के उपरान्त दाहिने हाथ को पानी से धो डाले। कंधे पर रखे हुए अँगौछे से हाथ मुंह पोंछले, जिससे हथेली, ओठ और मूँछ आदि पर आचमन किये हुए उच्छिष्ट जल का अंश लगा न रह जावे।

तीन आचमन त्रिगुण मयी माता की त्रिविधि शक्तियों को अपने अन्दर धारण करने के लिए है। प्रथम आचमन के साथ सतोगुणी विश्व व्यापी, सूक्ष्म शक्ति 'ह्रीं' शक्ति का ध्यान करते हैं, और भावना करते हैं कि विद्युत सरीखी सूक्ष्म नील किरणें मेरे मंत्रोच्चार के साथ साथ सब ओर से इस जल में प्रवेश कर रही हैं और यह जल उस शक्ति से ओत प्रोत होरहा है। आचमन करने के साथ जल में संमिश्रित वह सब शक्तियां अपने अन्दर प्रवेश करने की भावना करनी चाहिए और अनुभव करना चाहिए कि मेरे अन्दर सतोगुण का पर्याप्त मात्रा में प्रवेश हुआ है। इसी प्रकार दूसरे आचमन के साथ रजोगुणी 'श्रीं' शक्ति की पीत वर्ण किरणों को जल में आकर्षित होने और आचमन के साथ शरीर में प्रवेश होने की भावना करनी चाहिए। तीसरे आचमन में तमोगुणी 'क्लीं' भावना की रक्त वर्ण शक्तियों के अपने में धारण होने का भाव जागृत करना चाहिए।

जैसे बालक माता का दूध पीकर उसके गुणों और शक्तियों को अपने में धारण करता है और परिपुष्ट होता है। उसी प्रकार साधक मंत्र बल से आचमन के जल को गायत्री माता के दूध के समान बना लेता है, और उसका पान करके अपने आत्म बल को बढ़ाता है। इस आचमन से उसे त्रिविधि ह्रीं, श्रीं, क्लीं शक्ति से युक्त आत्मबल मिलता है तदनुसार उसको आत्मिक पवित्रता, सांसारिक समृद्धि और सुदृढ़ बनाने वाली शक्ति की प्राप्ति होती है।

(२) शिखा बन्धन—आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसमें ऐसी गांठ लगानी चाहिए जो सिरा खींचने से खुल जाय। इसे आधी गांठ कहते हैं। गांठ लगाते समय गायत्री मंत्र का उच्चारण करते जाना चाहिए।

शिखा, मस्तिष्क के केन्द्र विन्दु पर स्थापित है। जैसे रेडियो के ध्वनि विस्तारक केन्द्रों में ऊंचे खंभे लगे होते हैं और वहाँ से ब्राडकास्ट की तरंगें चारों ओर फेंकी जाती हैं उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क का विद्युत भंडार शिखा स्थान पर है। इस केन्द्र में से हमारे विचार संकल्प और शक्ति परमाणु प्रति घड़ी बाहर निकल २ कर आकाश में दौड़ते रहते हैं। इस प्रवाह से शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है और अपना मानसिक कोष घटता है। इसका प्रतिरोध करने के लिए शिखा में गांठ लगा देते हैं। सदा गांठ लगाये रहने से अपनी मानसिक शक्तियों का बहुत सा अपव्यय बच जाता है।

संध्या करते समय विशेष रूप से गांठ लगाने का प्रयोजन यह है कि रात्रि को सोते समय यह गांठ प्रायः शिथिल होजाती है या खुल जाती है। फिर स्नान करते समय केश शुद्धि के लिए शिखा को खोलना भी पड़ता है। संध्या करते समय अनेक सूक्ष्म तत्व आकर्षित होकर अपने अन्दर स्थित होते हैं वे सब मस्तक केन्द्र से निकल कर बाहर न उड़ जांय और कहीं अपने को साधना के लाभ से वंचित न रहना पड़े इसलिए शिखा में गांठ लगादी जाती है। फुटबाल के भीतर की रबड़ में एक हवा भरने की नली होती है इसमें गांठ लगा देने से भीतर भरी हुई वायु बाहर नहीं निकलने पाती। साइकिल के पहियों में भरी हुई हवा को रोकने के लिए भी एक छोटी वालट्यूब नामक रबड़ की नली लगी होती है जिसमें होकर हवा भीतर तो जासकती है पर बाहर नहीं आसकती, गांठ लगी हुई शिखा से भी यही प्रयोजन पूरा होता है। वह बाहर के विचार और शक्ति समूह को ग्रहण तो करती

है पर भीतर के तत्वों का अनावश्यक व्यय नहीं होने देती।

आचमन से पूर्वशिखा बन्धन इसलिए नहीं होता क्योंकि उस समय त्रिविधि शक्ति का आकर्षण जहां जल द्वारा होता है वहाँ मस्तिष्क के मध्य केन्द्र द्वारा भी होता है। इस प्रकार शिखा खुली रहने से दुहरा लाभ होता है। तत्पश्चात् उसे बांध दिया जाता है।

(३) प्राणायाम—सन्ध्या का तीसरा कोष है प्राणायाम अथवा प्राणाकर्षण। गायत्री की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए पूर्व पृष्ठों में यह बताया जाचुका है कि सृष्टि दो प्रकार की है। (१) जड़—अर्थात् परमाणुमयी (२) चैतन्य-अर्थात् प्राण मयी। निखिल विश्व में जिस प्रकार परमाणुओं के संयोग वियोग से विविध प्रकार के दृश्य उपस्थित होते रहते हैं उसी प्रकार चैतन्य-प्राण-सत्ता की हलचलें चैतन्य जगत की विविधि घटनाएें घटित होती हैं। जैसे वायु अपने क्षेत्र में सर्वत्र भरी हुई है उसी प्रकार वायु से भी असंख्य गुना सूक्ष्म चैतन्य प्राण तत्व सर्वत्र व्याप्त है। इस तत्व की न्यूनाधिकता से हमारा मानस क्षेत्र बलवान तथा निर्बल होता है। इस प्राण तत्व को जो जितनी मात्रा में अधिक आकर्षित कर लेता है, धारण कर लेता है, उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही बलवान होजाती है। आत्म तेज, शूरता, दृढ़ता, पुरुषार्थ, विशालता दूरदर्शिता, महानता, सहन शीलता, धैर्य, स्थिरता, सरीखे गुण प्राणशक्ति के परिचायक हैं। जिन में प्राण कम होता है वे शरीर से स्थूल भले ही हों पर डरपोक, दब्बू, झेंपने वाले, कायर, अस्थिर मति, संकीर्ण, अनुदार, स्वार्थी, अपराधी मनोवृत्ति के, घबराने वाले, अधीर, तुच्छ नीच विचारों में ग्रस्त, एवं चंचल मनोवृत्ति के होते हैं। इन दुर्गुणों के होते हुए कोई व्यक्ति महान नहीं बन सकता। इसलिए साधक को प्राण शक्ति अधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण करने की आवश्यकता होती है। जिस क्रिया द्वारा विश्व व्यापी प्राण तत्व में से खींचकर अधिक मात्रा में प्राण शक्ति को हम अपने अन्दर धारण करते हैं उसे प्राणायाम कहा जाता है।

प्राणायाम के समय मेरुदंड को विशेष रूप से सावधान होकर सीधा कर लीजिए। क्योंकि मेरुदंड में स्थित इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा प्राण शक्ति का आवागमन होता है और यदि रीढ़ टेढ़ी झुकी हुई रहे तो मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी तक प्राण की धारा निर्बाध गति से न पहुंच सकेगी वह प्राणायाम का वास्तविक लाभ न मिल सकेगा।

प्राणायाम के चार भाग हैं। (१) पूरक (२) अन्तर कुंभक (३) रेचक (४) वाह्य कुंभक। वायु को भीतर खींचने का नाम पूरक, वायु को भीतर रोके रहने का नाम अन्तर कुंभक, वायु को बाहर निकालने का नाम रेचक और बिना सांस के रहने को, वायु बाहर रोके रहने को वाह्य कुंभक कहते हैं। इन चारों के लिए गायत्री मंत्र के चार भागों की नियुक्ति की गई है। पूरक के साथ 'ॐ भूर्भुवः', अन्तर कुंभक के साथ 'तत्सवितुर्वरेण्यं', रेचक के साथ 'भर्गो देवस्य धीमहि', वाह्य कुंभक के साथ 'धियोयोनः प्रचोदयात्' मंत्र भाग का जप होना चाहिए।

(अ) स्वस्थ चित्त से बैठिये, मुख को बन्द कर लीजिए। नेत्रों को बन्द या अधखुले रखिए। अब सांस को धीरे धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरंभ कीजिए और 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मंत्र भाग का मन ही मन उच्चारण करते चलिए। और भावना कीजिए कि "विश्व का भी दुख नाशक, सुख स्वरूप, ब्रह्म की चैतन्य प्राण शक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूं। इस भावना और इस मंत्र भाग के साथ धीरे धीरे सांस खींचिए और जितनी अधिक वायु भीतर भर सकें भर लीजिये।

(ब) अब वायु को भीतर रोकिए और "तत्सवितुर्वरेण्यं" इस भाग का जप कीजिए साथ ही भावना कीजिए कि "नासिका द्वारा

खींचा हुआ वह प्राण श्रेष्ठ है। सूर्य के समान तेजस्वी है। उसका तेज मेरे अंग प्रत्यंग में रोम२ में भरा जारहा है।" इस भावना के साथ पूरक की अपेक्षा आधे समय तक वायु को भीतर रोक रखे।

(स) अब नासिका द्वारा वायु को धीरे २ बाहर निकालना आरंभ कीजिए और "भर्गो देवस्य धीमहि" इस मंत्र भाग को जपिये तथा भावना कीजिए कि "यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा होरहा है।" वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगाना चाहिए जितना वायु खींचने में लगाया था।

(द) जब भीतर की सब वायु बाहर निकल आवे तो जितनी देर वायु को भीतर रोक रखा था उतनी ही देर बाहर रोक रखें अर्थात् बिना सांस लिए रहें और 'धियो योनः प्रचोदयात्' इस मंत्र भाग को जपते रहें। साथ ही भावना करें कि "भगवती वेदमाता आद्यशक्ति गायत्री हमारी सद्बुद्धि को जागृत कर रही हैं।"

यह एक प्राणायाम हुआ। अब इसी प्रकार पुनः इन क्रियाओं की पुनरुक्ति करते हुए दूसरा प्राणायाम करें। संध्या में यह पांच प्राणायाम करने चाहिये। जिससे शरीर स्थित प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नामक पांचों प्राणों का व्यायाम, प्रस्फुरण और परिमार्जन होजाता है।

(४) अघमर्षण—अघमर्षण कहते हैं—पाप के नाश करने को। गायत्री की पुण्य भावना के प्रवेश करने से पाप का नाश होता है। प्रकाश के आगमन के साथ साथ अन्धकार नष्ट होता है, पुण्य संकल्पों के उदय के साथ साथ ही पापों का संहार भी होता है। बलवृद्धि के साथ साथ निर्बलता का अन्त होता चलता है। ब्रह्म संध्या की ब्राह्मी भावनाएं हमारे अघ का मर्षण करती चलती हैं।

अघमर्षण के लिए दाहिने हाथ पर की हथेली पर जल लेकर उसे दाहिने नथुने के समीप ले आना चाहिए। समीप का अर्थ है—छै अंगुल दूर। बांए हाथ के अंगूठे से बांया नथुना बन्द करलें और दाहिने नथुने से धीरे धीरे सांस खींचना आरंभ करें। सांस खींचते समय भावना करें कि "गायत्री माता का पुण्य प्रतीक यह जल अपनी दिव्य शक्तियों सहित पापों का संहार करने के लिए सांस के साथ मेरे अन्दर प्रवेश कर रहा है। और भीतर से पापों को, मलों को, विकारों को, संहार कर रहा है।"

जब पूरी सांस खींच चुकें तो बांया नथुना खोलदें और दाहिना नथुना अंगूठे से बन्द करदें और सांस बाहर निकालना आरंभ करें। दाहिनी हथेली पर रखे हुए जल को अब बाएं नथुने के सामने करें और भावना करें कि "नष्ट हुए पापों की लाशों का समूह सांस के साथ बाहर निकल कर इस जल में गिर रहा है।' जब सांस पूरी बाहर निकल जाय तो उस जल को बिना देखे घृणा पूर्वक बांई ओर पटक देना चाहिए।

अघमर्षण क्रिया में जल को हथेली पर भरते समय 'ॐ भूर्भुवः स्वः, दाहिने नथुने से सांस खींचते समय 'तत्सवितुर्वरेण्यं, इतना मंत्र भाग जपना चाहिए और बांए नथुने से सांस छोड़ते समय 'भर्गोदेवस्य धीमहि' और जल पटकते समय 'धियोयोनः प्रचोदयात्' इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

यह क्रिया तीन बार करनी चाहिए जिससे काया के, वाणी के और मन के त्रिविधि पापों का संहार होसके।

(५) न्यास—न्यास कहते हैं धारण करने को। अंग प्रत्यंगों में गायत्री की सतोगुणी शक्ति को धारण करने, स्थापित करने, भरने, ओत प्रोत करने के लिए न्यास किया जाता है। गायत्री के प्रत्येक शब्द का महत्त्वपूर्ण मर्मस्थलों का घनिष्ट संबंध है। जैसे सितार के अमुक भाग में, अमुक आघात के साथ उंगली का आघात लगने से अमुक प्रकार अमुक ध्वनिका स्वर निकलते हैं उसी प्रकार शरीर वीणाको संध्याकालमें उंगलियों के सहारे दिव्य भाव से झंकृत किया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि स्वभावतः अपवित्र रहने वाले शरीर से दैवी सान्निध्य ठीक प्रकार नहीं होसकता इसलिए उसके प्रमुख स्थानों में दैवी पवित्रता स्थापित करके उसमें इतनी मात्रा दैवी तत्वों की स्थापित करती जाती है कि वह दैवी साधना का अधिकारी बन जावे।

न्यास के लिए भिन्न भिन्न उपासना विधियों में अलग अलग विधान है कि किन उंगलियों को काम में लाया जाय। गायत्री की ब्रह्म संध्या में अंगूठा और अनामिका उंगली का प्रयोग प्रयोजनीय ठहराया गया है। अंगूठा और अनिमिका उंगली को मिलाकर विभिन्न अंगों का स्पर्श इस भावना से करना चाहिए कि मेरे यह अंग गायत्री शक्ति से पवित्र तथा बलवान होरहा है। अंग स्पर्श के साथ निम्न प्रकार मंत्रोच्चार करना चाहिए—

ॐ भूर्भुवः स्वः—मूर्धायै

तत्सवितुः—नेत्राभ्यां

वरेण्यं—कर्णाभ्यां

भर्गो—मुखाय

देवस्य—हृदयाय

धियोयोनः—नाभ्यै

प्रचोदयात्—हस्तपादाभ्यां

यह सात अंग शरीर ब्रह्माण्ड के सात लोक हैं अथवा यों कहिए कि आत्मा रूपी सविता के सात वाहन अश्व हैं। शरीर सप्ताह के सात दिन हैं। यों साधारणतः दस इन्द्रियां मानी जाती हैं पर गायत्री योग के अन्तर्गत सात इन्द्रियां मानी गई हैं। (१) मूर्धा (मस्तिष्क, मन) (२) नेत्र (३) कर्ण (४) वाणी और रसना (५) हृदय, अन्तःकरण (६) नाभि, जननेन्द्रिय (७) भ्रमण (हाथ पैर) इन सातों में अपवित्रता न रहे, इनके द्वारा कुमार्ग को न अपनाया जाय, अविवेक पूर्ण आचरण न हो इस प्रतिरोध के लिए न्यास किया जाता है। इन सात अंगों में भगवती की सात शक्तियां निवास करती हैं उन्हें उपरोक्त न्यास द्वारा जागृत किया जाता है। जागृत हुई मातृकाऐं अपने अपने स्थान की रक्षा करती हैं, अवांछनीय तत्वों का संहार करती हैं। इस प्रकार साधक का अन्तः प्रदेश ब्राह्मी शक्ति का सुदृढ़ दुर्ग बन जाता है।

इन पंच कोषों का विनियोग करने के पश्चात्—आचमन, शिखाबन्ध, प्राणायाम, अघमर्षण, न्यास से निवृत्त होने के पश्चात् गायत्री का जप और ध्यान करना चाहिए। संध्या तथा जप में मंत्रोच्चार इस प्रकार करना चाहिए कि ओठ हिलते रहें शब्दोच्चार होता रहे पर निकट बैठा हुआ व्यक्ति उसे सुन न सके।

———

विघ्न विदारक-अनुष्ठान।

दैन्यं रुक्शोक चिन्तानां विरोधाक्रमणापदाम्।
कार्यं गायत्र्यनुष्ठानं भयानां वारणायच॥

(दैन्य रुक् शोक चिन्तानां) गरीबी, रोग, शोक, चिन्ता (विरोधाक्रमणापदां) विरोध, आक्रमण, आपत्तियाँ (च) और (भयानां) भय इनके (वारणाय) निवारण के लिए (गायत्र्यनुष्ठानं) गायत्री का अनुष्ठान (कार्यं) करना चाहिए।

जायते स्थितिरस्मात्साभिलाषा मन ईप्सिताः।
यतः सर्वेऽभि जायन्ते यथाकालं हि पूर्णताम्॥

(अस्मात्) इस अनुष्ठान से (सा) वह (स्थितिः) स्थिति (जायते) पैदा होती है (यतः) जिससे (सर्वे) समस्त (मन ईप्सिताः) मनोवांछित (अभिलाषाः) अभिलाषाऐं (यथाकालं) यथा समय (पूर्णता) पूर्णता को (जायन्ते) प्राप्त होती हैं।

(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

वार्षिक मू० २।।) सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई। एक अंक का

इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ।।

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पादक—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम०ए

वर्ष ९] मथुरा, १ मई सन् १९४८ ई० [अंक

वेदमाता गायत्री की महिमा !

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो स्मृताः ।
ताभ्यः सारस्तुगायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा ।।—याज्ञवल्क्य०

वेदों का सार गुह्य उपनिषद् हैं, उपनिषदों का सार गायत्री तथा तीन व्याहृतियाँ हैं।

यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः ।
एवं हि सर्व वेदानां गायत्री सारमुच्यते ।।—मनु०

जिस प्रकार पुष्पों का शहद, दूध का घी, रसों का दूध सार है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री को कहा जाता है।

गायत्री वेद जननी गायत्री पाप नाशिनी ।
गायत्र्यास्तु परन्नास्ति दिवि चेह च पावनम् ।।—व्यासः०

गायत्री वेदों की माता है, गायत्री पाप नाश करने वाली है, अतः गायत्री से श्रेष्ठ पृथ्वी तथा स्वर्ग में भी पवित्र करने वाला और कोई नहीं है।